योगसारसंग्रह में समागत विषयों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 अशोक कुमार*

योगसारसंग्रहकार विज्ञानभिक्षु ने योगदर्शन के गूढ़ विषयों की गहनता को ध्यान में रखते हुए एवं इस दर्शन के विषय को उपादेय बनाने के लिए योगसारसंग्रह नामक ग्रन्थ की रचना की। उनके मतानुसार योग में अमृतरूपी सार को उन्होंने इस ग्रन्थरुपी घट में पर्याप्त मन्थन के बाद प्रस्तुत किया है। अमृतसार प्राप्ति की प्रक्रिया में योगवार्तिक को अचलदण्ड के रूप में तथा योग के विस्तृत वाङ्मय को सागर रूप में स्वीकार किया है।1 योगविषयक मन्तव्य को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया है। विज्ञानभिक्षु का 'योगसारसंग्रह' ग्रन्थ पतंजलि रचित योगसूष एवं उस पर लिखे व्यासभाष्य की टीका योगवार्तिक में जिन धारणाओं को सूष की व्याख्या करते हुए दिया गया है उन्हीं का सार प्रस्तुत करना है। विज्ञानभिक्षु का 'योगसारसंग्रह' ग्रन्थ पतंजलि रचित योगसूष एवं उस पर लिखे व्यासभाष्य की टीका योगवार्तिक में जिन धारणाओं को सूष की व्याख्या करते हुए दिया गया है। उन्हीं का सार प्रस्तुत करता है। यह चार अंशों में विभाजित है। प्रथम अंश में योगस्वरूप एवं उसके प्रयोजन द्वितीय अंश में योगसाधनों, तृतीय अंश में योगसिद्धिनिरूपण व अन्तिम चतुर्थ अंश में कैवल्यादि का निरूपण किया गया है। अन्तिम अंश में कैवल्य का निरूपण करते हुए विज्ञानभिक्षु ने अपने समन्वयात्मक दृष्टिकोण का अनन्य उदाहरण प्रस्तुत किया है, इसमें प्रायः सभी आस्तिक दर्शनों से अविरोध प्रदर्शित किया गया है।1 इस भाग में विज्ञानभिक्षु ने स्फोट, मनोवैभव एवं काल आदि ऐसे विषयों का भी व्याख्या किया है जिन पर योगदर्शन के अन्य ग्रन्थ मौन थे।

योगसारसंग्रहकार सांख्य, वेदान्त एवं योग के विषय में कहना है कि तीनों शास्षों के प्रतिपाद्य विषय भिन्न–भिन्न हैं। यद्यपि तीनों शास्षों का स्तर पारमार्थिक है फिर भी पारमार्थिक स्तर पर ही विषय–भेद है। उनके मत में न्याय, वैशेषिक (मीमांसा भी) व्यावहारिक स्तर के विषयों का तत्वज्ञान उपस्थित करते हैं इसलिए पारमार्थिक स्तर वाले सांख्य, योग और वेदान्त से उनका न तो कोई विरोध है, न पुनरुक्ति है और न ही न्यायादिकों की अप्रामाणिकता है2, क्योंकि 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः' यह नियम है। योगसारसंग्रहकार के अनुसार पारमार्थिक स्तर पर तीनों

***काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी–05**

दर्शनों में जो प्रतीयमान विरोध है वह है–वेदान्त में प्रधान विषय ईश्वर अथवा ब्रह्म है, सांख्य का विषय 'प्रकृतिपुरुषविवेक' और योग का प्रधान विषय प्रकृतिपुरुषविवेक को उत्पन्न करने वाला तथा उससे उत्पन्न होने वाला 'द्विविध–योग' है।3 इन तीनों में से प्रत्येक शास्ष के इन प्रधानप्रतिपाद्य विषयों की पारमार्थिक पृष्ठभूमि में वे तत्त्व भी गौण रूप से आ ही जाते हैं जिनका विवेचन तदतिरिक्त दो शास्षों में प्रधान तत्त्व के रूप में हुआ है। वह ब्रह्म की आनन्दस्वरूपता के कट्टर विरोधी थे तो ईश्वर को सामान्य जीवों से भिन्न व क्लेशकर्मादि से रहित मानते थे। अद्वैत वेदान्तियों का खण्डन लाते हुए यह विशेष रूप से उत्तेजित हो जाते थे। उनके लिए वे ....., आधुनिक वेदान्तिमः व अपने वैनाशिकाः आदि विशेषताओं का प्रयोग करते हैं।4

योगसारसंग्रहकार तीनों दर्शनों सिद्धान्तों की परस्पर पूरकता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ब्रह्म का वर्णन बिना प्रकृति, जीव अथवा विवेक की पृष्ठभूमि के बिना संभव नहीं है। इसी प्रकार ज्ञानजनक और ज्ञानजन्य योग का निर्वचन भी ज्ञान के ज्ञेयभूत ब्रह्म, पुरुष और प्रकृति की पृष्ठभूमि के बिना सर्वथा असम्भव है। पूर्णज्ञान की प्राप्ति तीनों दर्शनों के सेवन से ही सम्भव है। सांख्य यदि एकान्तिक साधना का सहारा प्रस्तुत करता है तो वेदान्त उस एकान्तिकता को सार्वभौमिकता की विराट् पीठिका पर उतारकर मुक्ति–साधना का मार्ग प्रशसत करता है। योग दोनों प्रकार के सैद्धान्तिक निर्देशों की क्रियात्मक प्रस्तावना है। चाहे निरीश्वर सांख्य–साधना हो अथवा सेश्वरवदेान्त–साधना दोनों को योग के धरातल पर ही उतरना पड़ता है क्योंकि तदापादित सम्प्रज्ञातयोग के बिना ज्ञान या विवेक की उत्पत्ति सम्भव नहीं और ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं4 ज्ञान एवं योग का मुख्य फल ही योग है।5

योगसारसंग्रहकार के दार्शनिक सिद्धान्तों का साक्षात्कार तत्तद–विषयों के प्राधान्य के अनुसार वेदान्त, सांख्य और योग तीनों शास्षों के व्याख्या–ग्रन्थों में होता है। उनके अनुसार प्रत्येक शास्ष भिन्न विषय का प्रतिपादक है। इसलिए वेदान्तशास्ष के ग्रन्थों में उनके ब्रह्म, जीव, माया, जगत्प्रपंच सम्बन्धी विचार हैं। योगसारसंग्रहकार ने सांख्य, वेदान्त और योग इन तीनों दार्शनिक सिद्धान्तों को अपने दार्शनिक मतवाद के मूल में ग्रहण किया है। उनके सिद्धान्तों का प्रतिपादन इन्हीं के सामंजस्य में निहित है। यद्यपि ये तीनों दार्शनिक भाग में उनकी दृष्टि में भी अलग–अलग मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में अमोघ और पर्याप्त हैं तथापि तीनों का समन्वय, जो उनका दार्शनिक मतवाद कहा जा सकता है– सुगम, सरल, रोचक और सद्यःफलदायी होने के कारण अधिक श्रेयस्कर है। इस समन्वय के प्रति उनकी असीम आस्था है। दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते समय सर्वष वे इस समन्वय के लिए जागरूक हैं। इस प्रकार से इन सिद्धान्तों की संवलित षिवेणी

का संगम ही उनके दार्शनिक मतवाद का केन्द्रबिन्दु है। प्रायः टीकाकार जिस दर्शन पर लिखते हैं उसके मन्तव्यों को ही स्पष्ट करना चाहते हैं। जैसा कि तत्त्ववैशारदीकार श्री वाचस्पति मिश्र ने छः दर्शनों की व्याख्या में किया है अथवा यदि कृतिकार किसी मत विशेष पर अनुयायी होता है तो दर्शन का स्वरूप ही विकृत कर देता है या पूर्णतः उसका विरोध करता है परन्तु आचार्य विज्ञानभिक्षु ने सांख्य, योग एवं वेदान्त तीनों दर्शनों में समन्वय प्रस्तुत किया। अन्य दर्शनों को सम्भवतः वह इससे पूर्व की अवस्था मानते हैं अतः उस पर अधिक नहीं कहा है।

योगसारसंग्रहकार ने सांख्य, वेदान्त और योग दर्शनों पर भाष्य या वार्तिक लिखा है और तीनों दर्शनों में पूर्ण आत्मीयता तथा अनुभूति की दृष्टि रखी है। तीनों दर्शनों के लिए उन्होंने– अस्मच्छास्षे' 'अस्मन्मते', 'स्वशास्षे' इत्यादि पदों से अभिहित किया है। तीनों शास्ष उनके अपने हैं। तीनों उनके लिए प्रधान है। उनका मूल विश्वास यह है कि जिन ऋषियों ने श्रुतियों के आधार पर तथ्यों का प्रतिपादन किया है व सभी दिव्य–दृष्टि वाले तथा ऋतम्भराप्रज्ञा–पूर्ण थे। अतः उनकी बातें न तो भ्रान्त हो सकती हैं और न ही परस्पर .....। विज्ञानभिक्षु ने योगसिद्धान्तों को वेदान्त से सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया है जो योगसिद्धान्तों के उनके पूर्व के व्याख्याकारों में देखने को नहीं मिलता। योगसारसंग्रहकार पण्डित होने के साथ–साथ योगी भी थे, जो उनकी दार्शनिकता को निजता प्रदान करता है। योगसारसंग्रहकार की दार्शनिकता दो रूपों में मिलती है। एक है उनकी सांख्य, योग और वेदान्त साधनाओं का स्वरूप और दूसरा है उनका निजी दर्शन, जो कि उनके समन्वयवाद के नाम से उद्घाटित होता है। उनकी दार्शनिकता के दोनों रूप अन्ततः एकाकार हो उठते हैं, क्योंकि न तो उनका समन्वय उनके सांख्य, योग और वेदान्त–दर्शनगत सिद्धान्तों के विरुद्ध है और न ही उनके सांख्य, योग और वेदान्त–सिद्धान्त कहीं उनके समन्वयवाद का विरोध करते हैं।

संदर्भ :–

1. वार्त्तिककाचलदण्डेन मथित्वा योगसारम्। उद्धृत्यामृतसारोऽयं ग्रन्थकुम्भे निधीयते।। –योगसारसंग्रह, मंगलाचरण
2. न चैतावता न्यायाद्यप्रामाण्यं विवक्षितार्थे वेद्यातिरिक्तांशे बाधाभावाद्।–सांख्यप्रवचनभाष्य, पृ0 8
3. ब्रह्ममीमांसासांख्यार्दिषु च ज्ञानमेव विचारितं बाहुल्येन ज्ञानसाधनमाषस्तु योगः संक्षेपतः ज्ञानजन्ययोगस्तु संक्षेपतोऽपि तेषु नोक्तोऽतोऽतिविस्तरेण द्विविधम् योगं प्रतिपिपादयिषुर्भगवान्पतंजलिः शिष्यावधानायादौयोगानुशासनं शास्षमारम्यतया प्रतिज्ञातवान्।। –योगवार्तिक, ृ0 5
4. योगसारसंग्रह, भूमिका, पृ0 16
5. ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। ऋग्वेद
6. ज्ञानयोगयोर्मुख्यं फलं कैवल्यं। –योगसारसंग्रह, पृ0 15

****